भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव अधिकार अवधारणा की उपस्थिति

13

वरदान शर्मा

सारांश

मानव अधिकारों को सामान्यतः आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक चेतना की उपज माना जाता है किंतु यह दृष्टि कोण मानव अधिकारों की वैचारिक उत्पत्ति को सीमित कर देता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव जीवन की गरिमा नैतिक उत्तर दायित्व सामाजिक न्याय और करुणा जैसे मूल्य अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान रहे हैं। यद्यपि भारतीय परंपरा में 'मानव अधिकार' जैसी आधुनिक शब्दावली का अभाव है फिर भी धर्म कर्तव्य अहिंसा और समताकी अवधारणाएँ मानव अधिकारों की बुनियादी संरचना निर्मित करती हैं। यह शोध पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव अधिकारों की अवधारणा की उपस्थिति को दार्शनिक नैतिक एवं सामाजिक संदर्भों में विश्लेषित करता है तथा यह तर्क प्रस्तुत करता है कि भारतीय दृष्टि कोण अधिकार–केंद्रित न होकर कर्तव्य– केंद्रित होते हुए भी मानव अधिकारों के संरक्षण में सक्षम है।

प्रस्तावना

आधुनिक मानव अधिकार विमर्श का विकास यूरोप में अठारहवीं शताब्दी के राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों के साथ हुआ। परिणाम स्वरूप यह मान लिया गया कि मानव अधिकार एक विशुद्ध आधुनिक और पश्चिमी अवधारणा है। किंतु जब भारतीय ज्ञान परंपरा का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है तो यह स्पष्ट होता है कि मानव अधिकारों के मूल मूल्य जैसे जीवन की पवित्रता समानता न्याय और स्वतंत्रता भारतीय चिंतन में पहले से ही निहित थे। अंतर केवल यह है कि भारतीय परंपरा ने इन मूल्यों को अधिकारों के रूप में नहीं बल्कि कर्तव्यों और नैतिक आचरण के रूप में व्यक्त किया।

मानव अधिकार वह नैसर्गिक अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को उसके जन्म के साथ प्राप्त होते हैं। ये अधिकार किसी राज्य सरकार या संस्था की कृपा पर आधारित नहीं होते बल्कि मानव गरिमा और स्वतंत्र अस्तित्व की स्वाभाविक अभि व्यक्ति हैं। आधुनिक युग में मानव अधिकारों को अंतर राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त है विशेषतः 1948 की सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणा के माध्यम से।

वरदान शर्मा
छात्र दिल्ली विश्वविद्यालय
Publisher: Anu Books, DOI: https://doi.org/10.31995/Book.AB356-A26. Ch.13
Book Name : भारतीय ज्ञान परम्परा और सामाजिक विज्ञान
Plagiarism Report: 10%

हालाँकि मानव अधिकारों की यह आधुनिक संरचना मुख्यतः पश्चिमी ऐतिहासिक अनुभवों जैसे दृपुन र्जागरण प्रबोधन काल और राजनीतिक क्रांतियों सेविक सित हुई मानी जाती है। इसके विपरीत भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव जीवन नैतिकता सामाजिक उत्तर दायित्व और न्याय की अवधारणाएँ सहस्राब्दियों से दार्शनिक चिंतन का विषय रही हैं।

भारतीय दृष्टि कोण में अधिकार और कर्तव्य परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूर कमाने गए हैं। व्यक्ति की स्वतंत्रता को स्वीकार करते हुए भी उसे सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक अनुशासन से जोड़ा गया हैं।

भारतीय ज्ञान परंपरा का नैतिक–दार्शनिकआधार

भारतीय चिंतन का केंद्रीय तत्व 'धर्म' है। धर्म को संकीर्ण धार्मिक अर्थों में नहीं, बल्कि जीवन के नैतिक और सामाजिक नियमन के रूप में समझा गया है। धर्म व्यक्ति को यह सिखाता है कि उसका आचरण ऐसा हो जिससे समाज में किसी अन्य की स्वतंत्रता या गरिमा का हननन हो। इस प्रकार, धर्म सामाजिक संतुलन और न्याय का आधार बनता है। जहाँ पश्चिमी परंपरा में व्यक्ति अपने अधिकारों का दावा करता है, वहीं भारतीय परंपरा में व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करके समाज में अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करता है।

भारतीय ज्ञान परंपरा केवल धार्मिक ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, नैतिकता, चिकित्सा और जीवन–दर्शन का समन्वित स्वरूप है। वेदों और उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म की एकात्मकता का सिद्धांत व्यक्ति और समाज के मध्य गहरे नैतिक संबंध को स्थापित करता है। "अहंब्रह्मास्मि" और "तत्त्वमसि" जैसे महा वाक्य व्यक्ति को मात्र अधिकार–धारी नहीं, बल्कि व्यापक अस्तित्व का उत्तरदायी अंग मानते हैं।

महाभारत और भगवद्गीता में धर्म को कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है। गीता का कर्म योग यह स्पष्ट करता है कि अधिकार का वास्तविक आधार कर्तव्य पालन है। रामायण में राम का चरित्र व्यक्तिगत अधिकारों के त्याग और सामाजि क धर्म की प्राथमिकता का प्रतीक है। बौद्ध और जैन दर्शन करुणा, अहिंसा और समता पर आधारित मानव गरिमा की रक्षा को केंद्रीय मूल्य मानते हैं।

वेद और उप निषदों में मानव गरिमा की अवधारणा

वैदिक साहित्य में मानव को केवल भौतिक प्राणी नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में देखा गया है। 'वसुधैवकुटुम्बकम' की भावना संपूर्ण मानवता की समानता और पारस्परिक उत्तर दायित्व को व्यक्त करती है। उप निषदों में आत्मा की एकता का सिद्धांत यह स्थापित करता है किस भी मनुष्यों में एक ही दिव्यतत्व विद्यमान है। यह विचार किसी भी प्रकार के भेद भाव को नैतिक रूप से अस्वीकार्य ठहराता है और मानव गरिमा के सार्व भौमिक सिद्धांत को पुष्ट करता है।

अहिंसा और करुणाः मानव अधिकारों का नैतिक विस्तार

अहिंसा भारतीय ज्ञान परंपरा का सबसे सशक्त नैतिक सिद्धांत है। इसका अर्थ

केवल शारीरिक हिंसा का निषेध नहीं, बल्कि विचार, वाणी और कर्म, तीनों स्तरों पर किसी भी प्रकार के उत्पीड़न से बचना है। बौद्ध और जैन परंपरा ओंमें करुणा को केंद्रीय मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। जब समाज करुणा और अहिंसा को अपने व्यवहार का आधार बनाता है, तब जीवन और सम्मान के अधिकार स्वतः सुरक्षित हो जाते हैं।

धर्म शास्त्र और महाकाव्यः सामाजिक न्याय का दृष्टि कोण

भारतीय महाकाव्यों और धर्म शास्त्रों में सामाजिक न्याय की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महाभारत में यह बार दृबार प्रति पादित किया गया है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जन्म से नहीं, बल्कि उसके गुण और कर्म से होना चाहिए। यह विचार आधुनिक समानता के अधिकार के अत्यंत निकट है। यद्यपि ऐतिहासिक काल में सामाजिक विकृतियाँ उत्पन्न हुईं, किंतु ग्रंथों की मूल भावना मानव गरिमा और न्याय के पक्ष में रही है।

कर्तव्य– आधारित दृष्टि कोण और मानव अधिकार

भारतीय ज्ञान परंपरा की एक विशिष्ट विशेषता यह है किय हाँ अधिकारों की तुलना में कर्तव्यों को अधिक महत्व दिया गया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अधिकारोंको नकार दिया गया, बल्कि यह माना गया कि जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करेगा, तब अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति उत्पन्न ही नहीं होगी। यह दृष्टिकोण मानव अधिकारोंको एक नैतिक आधार प्रदान करता है, जो केवल का नूनीदावों तक सीमित नहीं रहता।

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशिष्टता यह है कि यहाँ अधिकार और कर्तव्य को अलग–अलग नहीं देखा गया। "ऋत" की अवधारणा नैतिक व्यवस्था को दर्शाती है, जहाँ व्यक्ति का आचरण ही उसके अधिकारों की वैधता निर्धारित करता है।

मनुस्मृति, याज्ञ वल्क्य स्मृति और अन्य धर्म शास्त्रों में अधिकारों की चर्चा कर्तव्य बोध के संदर्भ में की गई है। बौद्ध और जैन दर्शन में भी यह स्पष्ट है कि जब तक व्यक्ति दूसरों के अस्तित्व का सम्मान नहीं करता, तब तक वह नैतिक रूप से अपने अधिकारों का दावा नहीं कर सकता। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ–साथ मौलिक कर्तव्यों का समावेश इसी दार्शनिक परंपरा का आधुनिक रूप है।

भारतीय और आधुनिक दृष्टि कोण का तुलनात्मक विश्लेषण

आधुनिक मानव अधिकार दृष्टि कोण जहाँ व्यक्ति केंद्रित और विधिक है, वहीं भारतीय दृष्टि कोण नैतिक, सामुदायिक और कर्तव्य आधारित है। पश्चिमी परंपरा में अधिकार जन्म सिद्ध और स्वतंत्र माने जाते हैं, जबकि भारतीय परंपरा में वे सामाजिक उत्तर दायित्व से जुड़े होते हैं।

महात्मा गांधी का ट्रस्टी शिप सिद्धांत और डॉ. आंबेडकर की सामाजिक न्याय की अवधारणा इन दोनों दृष्टि कोणों के समन्वय का प्रयास प्रस्तुत करती है।

आधुनिक संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता

आज के वैश्विक समाज में मानव अधिकारों का विमर्श प्रायः कानूनी और

संस्थागत ढाँचों तक सीमित हो गया है। ऐसे में भारतीय ज्ञान परंपरा का नैतिक और मानवीय दृष्टि कोण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों के साथ–साथ मौलिक कर्तव्यों का समावेश इसी परंपरा की आधुनिक अभिव्यक्ति है। यह संतुलन मानव अधिकारों को अधिक उत्तरदायी और समाजोन्मुख बनाता है।

आधुनिक मानव अधिकारों का विकास यूरोप में 17 वीं–18वीं शताब्दी के दौरान हुआ। इस अवधारणा का मूल उद्देश्य व्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की रक्षा करना है। सार्वभौमिक मानव अधिकार घोशणा ने इन अधिकारों को वैश्विक मान्यता प्रदान की और इन्हें जाति, धर्म, लिंगऔर राष्ट्रीयता से परेमाना।

यह दृष्टि कोण विधिक संरचनाओं और राज्य–केंद्रित संरक्षण पर आधारित है। यद्यपि इसमें कर्तव्यों का उल्लेख है, परंतु इस का प्रमुख केंद्र व्यक्ति और उसके अधिका रहें।

शोध के उद्देश्य

1. भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मानव अधिकारों की अवधारणा का दार्शनिक एवं वैचारिक विश्लेषण करना, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि प्राचीन भारतीय चिंतन में मानव गरिमा, स्वतंत्रता और समानता को किस प्रकार समझा गया है।
2. वेदों, उपनिषदों, महाकाव्यों, बौद्ध एवं जैन दर्शन तथा संत परंपरा में अंतर्निहित मानव–मूल्यों और नैतिक सिद्धांतों का अध्ययन कर मानव अधिकारों के सांस्कृतिक एवं नैतिक आधारों को चिन्हित करना।
3. आधुनिक मानव अधिकार अवधारणा के प्रमुख सिद्धांतों और संरचनाओं का संक्षिप्त विवेचन करते हुए भारतीय दृष्टिकोण से उसकी तुलना करना, जिस से दोनों परंपरा ओंके वैचारिक अंतर और सामंजस्य बिंदुओं को स्पष्ट किया जा सके।
4. भारतीय ज्ञान परंपरा में अधिकार और कर्तव्य के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करना तथा यह प्रतिपादित करना कि कर्तव्य बोध किस प्रकार अधिकारों की वैधता और सामाजिक संतुलन का आधार बनता है।
5. भारतीय और आधुनिक मानव अधिकार दृष्टिकोणों के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से यह मूल्यांकन करना कि दोनों को किस प्रकार परस्पर पूरक बनाकर अधिक समग्र और न्याय संगत मानव अधिकार ढाँचा विकसित किया जा सकता है।

शोधप्रक्रिया

प्रस्तुत अध्ययन की शोध प्रक्रिया गुणात्मक (Qualitative) प्रकृति की है, जिसका उद्देश्य भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मानव अधिकारों की अवधारणा को दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा समालोचनात्मक दृष्टि से समझना है। यह शोध मात्र तथ्यों के संकलन तक सीमित न होकर विचारों, मूल्यों और वैचारिक संरचनाओं की व्याख्या एवं पुन विश्लेषण पर आधारित है।

इस शोध में सर्वप्रथम विषय से संबंधित प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का चयन किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में वेद, उपनिषद, महाभारत, रामायण, बौद्ध एवं

जैनग्रंथ, धर्म शास्त्र तथा संत साहित्यको सम्मिलित किया गया है। इन ग्रंथों का अध्ययन मूल संदर्भों के आधार पर किया गया है, ताकि मानव गरिमा, स्वतंत्रता, समानता, करुणा और कर्तव्य बोध जैसे मूल्यों की दार्शनिक व्याख्या की जा सके। द्वितीयक स्रोतों में समकालीन विद्वानों कीपुस्तकों, शोधलेखों, पत्रिकाओं और आधुनिक मानव अधिकार संबंधी दस्तावेजों का उपयोग किया गया है, जिससे विषय की समकालीन व्याख्याओं और विमर्श को समझा जा सके।

शोध प्रक्रिया का दूसरा चरण वैचारिक विश्लेषण (Conceptual Analysis) पर केंद्रित है। इस चरण में भारतीय ज्ञान परंपरा में प्रयुक्त प्रमुख अवधारणाओं जैसे धर्म, ऋत, कर्म, अहिंसा, करुणा और लोक कल्याण का विश्लेषण मानव अधिकारों के संदर्भ में किया गया है। यह विश्लेषण इस दृष्टि से किया गया है कि किस प्रकार ये अवधारणाएँ अधिकारों को कर्तव्यों और नैतिक उत्तर दायित्व से जोड़ती हैं।

तृतीय चरण में तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method) का प्रयोग किया गया है। इस अंतर्गत भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मानव अधिकार दृष्टिकोण की तुलना आधुनिक मानव अधिकार अवधारणा से की गई है। इस तुलना के माध्यम से दोनों परंपराओं की वैचारिक भिन्नताओं, सीमाओं तथा संभावित सामंजस्य बिंदुओं को रेखांकित किया गया है। यह चरण यह समझने में सहायक है कि भारतीय दृष्टिकोण आधुनिक मानव अधिकार विमर्श को किस प्रकार समृद्ध कर सकता है।

शोध कार्य क्षेत्र (Scope of the Study)

प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित मानव अधिकारों की अवधारणा के सैद्धान्तिक, दार्शनिक एवं नैतिक आयामोंतक विस्तृत है। यह अध्ययन भारतीय बौद्धिक परंपरा के अंतर्गत विकसित मानव – मूल्यों, अधिकार बोध और कर्तव्य चेतना का समालोचनात्मक विश्लेषण करता है, किंतु किसी एक ग्रंथ, दर्शन ऐतिहासिक कालतक स्वयं को सीमित नहीं करता।

इस शोध कार्य के अंतर्गत वेद, उपनिषद, महाकाव्य, बौद्ध एवं जैन दर्शन, संत परंपरा तथा आधुनिक भारतीय चिंत कों के विचारों का अध्ययन किया गया है, ताकि यह समझा जा सके कि भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव गरिमा, स्वतंत्रता, समानता और न्यायकी अवधारणाएँ किस प्रकार विकसित हुई हैं। साथ ही, इस शोध का क्षेत्र भारतीय ज्ञान परंपरा और आधुनिक मानव अधिकार अवधारणा के तुलनात्मक अध्ययन तक भी विस्तृत है, जिससे दोनों दृष्टिकोणों के मध्य वैचारिक अंतर और संभावित सामंजस्य को स्पष्ट किया जा सके।

यह अध्ययन मुख्यतः वैचारिक और गुणात्मक प्रकृतिका है। अतः इसका क्षेत्र विधिक प्रावधानों के विस्तृत विश्लेषण, न्यायिक निर्णयों के अध्ययन अथवा सांख्यिकीय आँकड़ों के उपयोगत क विस्तारित नहीं किया गया है। शोध का केंद्र मानव अधिकारों के नैतिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार हैं, न कि उनकी कानूनी प्रवर्तन प्रक्रियाएँ।

इसके अतिरिक्त, यह शोध सम कालीन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा की प्रासंगिकता पर भी विचार करता है, किंतु समकालीन मानव अधिकार उल्लंघनों के विशिष्ट प्रकरणों या नीति–विश्लेषण को इसके दायरे में शामिल नहीं करता।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध कार्य का क्षेत्र भारतीय ज्ञान परंपरा के अंतर्गत मानव अधिकारों की अवधारणा को एक समग्र, तुलनात्मक और वैचारिक ढाँचे में समझने तक सीमित है, जिसका उद्देश्य मानव अधिकार विमर्श को नैतिक गहराई और सांस्कृतिक संतुलन प्रदान करना है।

निष्कर्ष

यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा मानवअधिकारों के अभाव की नहीं, बल्कि उनके वैकल्पिक नैतिक स्वरूप की परंपरा है। भारतीय दृष्टिकोण अधिकारों को कर्तव्यों से पृथक नहीं करता, बल्कि दोनों को परस्पर पूरक मानता है। यदि आधुनिक मानव अधिकार विमर्ष भारतीय ज्ञान परंपरा के नैतिक तत्वों धर्म, करुणा, अहिंसा और कर्तव्यको आत्म सात करे, तो यह अधिक मानवीय, समावेशी और टिकाऊ बन सकता है।

यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और मानव अधिकारों के मध्य गहरा और सार्थक संबंध है। भारतीय दृष्टि कोण मानव अधिकारों को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है, जिससे उनका स्वरूप अधिक समग्र बनता है। समकालीन विश्व में यदि मानव अधिकार विमर्श में भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों को समाहित किया जाए, तो एक अधिक न्याय संगत, संतुलित और मानवीय वैश्विक व्यवस्था की स्थापना संभव है।

संदर्भ

1. शर्मा, ए. (2015). इंडियन फिलॉसफी में मानव अधिकार. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. चक्रवर्ती, पी. (2017). भारतीय नैतिकता और मानव अधिकारः एक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य. कोलकाताः नेशनल बुक ट्रस्ट।
3. झा, वी. एन. (2016). प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा. नई दिल्लीः मोतीलाल बनारसी दास।
4. गुहा, रामचंद्र. (2019). भारतः एक परिचय. नई दिल्लीः पेंगु इन इंडिया।
5. कुमार, सुनील. (2020). मानव अधिकारः ऐतिहासिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्य. लखनऊः विश्वविद्यालय प्रकाषन।
6. रे, एम. (2018). भारत में धर्म, समाज और मानव अधिकार. मुंबईः लोक मंगल पब्लिकेशन्स।
7. सेन, अमर्त्य. (2009). न्यायका विचार. कैम्ब्रिजः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
8. नुसबाम, एम. (2000). महिला और मानव विकास. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।